International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN :2581-9925, Impact Factor: 7.555, Volume 07, No. 01(II), January- March, 2025, pp. 163-168

प्राचीन शिक्षा की प्रासंगिकता समग्र विवेचन

अनिता यादव*
डॉ. मंजू शर्मा**

सार

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारतीय शिक्षा की प्रासंगिकता का विवेचन किया गया है। भारतीय संस्कृति की आधारशिला के रूप में प्राचीन शिक्षा का महत्व सर्वविदित रहा है। शिक्षा एक ऐसा तत्व रही है जो व्यक्ति को प्रकृति और संस्कृति दोनों की ओर ले जाती है। इसलिए भारत में शिक्षा को औपचारिक न रखकर संस्कृति के अंग के रूप में स्वीकार किया गया था। यही कारण था कि तैत्तिरीय उपनिषद में तीन वल्लियों में शिक्षा को प्रथम वल्ली के रूप में उल्लेखित किया गया है और इसमें शिक्षा के आह्वान, पाठ वैभव, विषय आश्रय, उद्देश्य आदि के बारे में विचार किया गया है। प्राचीन शिक्षा बहुआयामी होने के कारण समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ थी। सभी लोग अपनी योग्यता के अनुरूप तथा इच्छानुसार विषय की शिक्षा प्राप्त करते। इसलिए शिक्षा समाप्ति के बाद रोजगार की समस्या नहीं होती। वर्तमान समाज में शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट नहीं हैं। इसलिए रोजगार बाजार में गलाकाट प्रतिस्पर्धा हो गई है। इसी कारण प्रतिभा पलायन और मानवीय संवेदना का नाश हो रहा है। हमारे देश के शिक्षाविदों का स्पष्ट मत था कि शिक्षा मनुष्य के आंतरिक विषादों का नाश करती है, उसे बुद्धिमान और विचारशील बनाती है, जबकि शिक्षा के क्षेत्र में भारी उत्रति के बाद भी आज मानवीय संवेदनाएं उभर नहीं पा रही हैं जिससे विद्यार्थियों के मन में संवेदना– विहीन महत्वकांक्षा जन्म ले रही है। शिक्षा को धनलाभ से पूर्णतः अलग नहीं रखा जा सकता, लेकिन भौतिक समृद्धि को भी शिक्षा का एकमात्र कारण नहीं माना जा सकता। इसलिए वर्तमान युग में प्राचीन भारत की शिक्षा के नैतिक मूल्य, चारित्रिक उत्थान, संस्कृति एवं परम्परा से समन्वय करने की आवश्यकता है।

शब्दकोशः *प्राचीन शिक्षा, प्रासंगिकता, मूल्य, प्रतिमान, संस्कार।*

प्रस्तावना

भारत के प्राचीन शिक्षाविदों ने विद्यार्थी की मौलिक प्रतिभा को विकसित करने का प्रयत्न किया। इसके परिणाम स्वरूप प्रतिभा पलायन जैसी कोई समस्या प्राचीन भारत में नहीं थी। प्राचीन शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास कर देती थी और आत्ममंथन के द्वारा आतरिक पवित्रता को विकसित करती थी। प्राचीन आचायों ने विद्यार्थियों को प्रलोभनों से दूर रहने का संदेश दिया। शिक्षा के ये आदर्श समाज के प्रत्येक परिस्थिति में सदा प्रासंगिक हैं और रहेंगे। इस अवधि में शिक्षा विभिन्न संस्कारों से बंधी हुई थी, जिससे विद्यार्थी में सात्विकता, सहजता और मानवीय गुणों का विकास हो जाता था। ये मानवीय गुण उसे जनसामान्य में प्रतिष्ठा दिलाते थे और विद्यार्थी में अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का बोध जागृत हो जाता था। वर्तमान शिक्षा के कारण शिक्षार्थी

---

* शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।
** शोध निर्देशिक, प्रोफेसर, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

और समाज के विभिन्न वर्ग भाव शून्यता की स्थिति में आ गये हैं। इस दृष्टि से प्राचीन भारत के आदर्श प्रासंगिक हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी इस बात का समर्थन किया था कि शिक्षा के लिए वन और जंगल की आवश्यकता है। उन्होंने गुरुकुल की शिक्षा पद्धति का समर्थन किया था और शांति निकेतन में इसका सफल प्रयोग भी किया। देश के अनेक बड़े विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षा संस्थान इनी आदर्श के अनुरूप शहरी कोलाहल से दूर स्थापित किये गये थे। यह बात अलग है कि अब शहरों का विस्तार ही विश्वविद्यालय तक हो गया है। फिर भी प्रकृति के सानिध्य में शिक्षा के आदर्श की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में बुद्धि और भावना का सामंजस्य देखने को मिलता था। शैक्षणिक पाठयक्रमों के माध्यम से विद्यार्थियों के मानवीय पक्ष को उभारने का प्रयत्न किया जाता था। आचार्य यह प्रयत्न करता था कि वे जिज्ञासु विद्यार्थियों को वैज्ञानिक शिक्षक्षा प्रदान करें और साथ ही अपनी सांस्कृतिक परंपराओं की जानकारी भी दें। समस्त आर्य जाति पर वैदिक साहित्य के संरक्षण का दायित्व था। वर्तमान में आर्थिक प्रलोभन के कारण विद्यार्थियों की स्वाभाविक जिज्ञासा का दमन हो रहा है और उनका स्वतंत्र चिन्तन विकसित नहीं हो पा रहा है। इसका प्रभाव सामाजिक संरचना पर भी पड़ता है। इसमें परिवर्तन किये जाने की तीव्र आवश्यकता है।

प्राचीन भारत में बालक को माता–पिता और परिवार के सदस्य ही प्राथमिक स्तर पर शिक्षा प्रदान करते थे। कुछ समय पश्चात उसे अपने आचार्य के सानिध्य में भेजा जाता था। आचार्य भी अनेक प्रकार के होते थे, जिन्हें कुलपति, आचार्य, उपाध्याय, प्रवक्ता, गुरु, अध्यापक आदि नामों से संबोधित किया जाता था। माता–पिता और आचार्य को अतिगुरु की श्रेणी में लिया जाता था। साहित्य के विद्वान पांच प्रकार के थे ऋषि, अनुषि उपज्ञ, कृत और व्याख्याकार। शिक्षण संस्थाओं को भी चार भागों में बांटा गया था जिन्हें कुल, गोत्र, चरण और परिषद् कहा जाता था, लेकिन इनमें से किसी भी स्थान पर मिथ्या प्रदर्शन नहीं होता वा सभी शिक्षक छात्रों के लिए आदर्श थे। शिक्षा के क्षेत्र में धन का महत्व नहीं था जो संपत्ति सुपथ से प्राप्त होती, उससे ही आचार्य सतुष्ट होते थे। बाद में राजकीय हस्तक्षेप के कारण शिक्षा के मूलभूत मूल्य नष्ट हो गये, जिसका परिणाम हम वर्तमान शिक्षा पद्धति की विसंगतियों के रूप में देख रहे हैं।

प्राचीन भारत की गुरुकुल शिक्षा पद्धति वास्तव में आश्रम पद्धति थी। इनमें गुरू और शिष्य का निरन्तर संपर्क रहता था और विद्यार्थी ब्रम्हचर्य धर्म का पालन करते हुए स्नातक के पद पर पहुंचता था. शिक्षक चरित्रवान थे और विद्यार्थी को संस्कृति और परम्परा के अनुरूप शिक्षा देते थे, गुरुकुलों की उन्नति शिक्षकों पर निर्भर थी, जहां सत्र प्रकार के भेदभाव में रहित शिक्षा दी जानी थी। गुरुकुल व्यवस्था लुप्त हो जाने के कारण ये सारी विशेषताएं नष्ट हो गई, शिक्षा पद्धति का ध्वंय समाप्त हो गया, गुरु–शिष्य का संबंध टूट गया और विद्याथों को सामाजिक बुराईयों ने घेर लिया। इन बुराईयों और आर्थिक लोभ से आचार्यगणा भी चचित नहीं रहे। शिक्षण संस्थाआ में राजकीय सहयोग धरि–धरि कम होने लगा और अनुदान के साथ–साथ राजकीय हस्तक्षेप और नियंत्रण बढ़ा है। व्यवस्था की कमजोरियों, राजनीति और अति– महत्वकांक्षा ने शिक्षण व्यवस्था के साथ–साथ संपूर्ण समाज को खोखला करने का प्रयत्न किया है। अतः आवश्यकता है कि प्राचीन शिक्षा पद्धति के आलोक में शिक्षा की सही व्याख्या की जानी चाहिए, शिक्षा की पवित्रता और गंभीरता को ध्यान में रखकर उसे संस्कृति पर आधारित बनाया जाना चाहिए।

प्राचीन भारत की गुरुकुल व्यवस्था टूट जाने के बाद भी गुरु और शिष्य के बीच अनेक वर्षों तक मधुर संबंध बने रहे लेकिन वर्तमान युग में आधुनिक शिक्षा के कारण शिक्षा उद्देश्यविहीन हो गई है। विद्यार्थी या तो रोजगार के लिये शिक्षा लेता है या शिक्षा लेकर रोजगार ढूंढने का प्रयत्न करता है। इसी के परिणाम स्वरूप शिक्षण संस्थाओं में राजनीति प्रारंभ हो गई है और भौतिक समृद्धि करना शिक्षा के सभी अंगों का उद्देश्य बन गया है। इसी के कारण सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न हो रही है, क्योंकि समाज के मूल आधार के रूप में पहचाने जाने वाली शिक्षा जीवन मूल्यों से जुड़ी हुई नहीं है। उपयुक्त यह है कि प्राचीनकाल की शिक्षा पद्धति के आदर्शों को यथासंभव सीमा तक अपनाया जाना चाहिए।

प्राचीन भारत में विद्या दान, अत्र दान और धन दान विशेष महत्वपूर्ण थे। धन दान से भी अधिक विद्या दान महत्वपूर्ण माना जाता था। आचार्य निःशुल्क शिक्षा देते और बदले में समाज, आचार्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। दुर्भाग्यवश अब आचार्य वेतनभोगी ष्कर्मचारीष की श्रेणी में परिवर्तित हो गये हैं और उन्हें वेतन देने वाली सरकार उनकी प्रत्येक गतिविधि में हस्तक्षेप करने लगी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि शिक्षण संस्थाओं में राजनीति तेजी से बढ़ी है। इसे नियंत्रित करने के लिए राजकीय सहयोग की ओर प्रयाण करना होगा तथा राजकीय नियन्त्रण धीरे–धीरे समाप्त करना होगा। शिक्षकों के विभिन्न वर्ग और तदर्थवाद समाप्त करके शिक्षा के व्यवसायीकरण पर रोक लगाना होगी।

प्राचीन शिक्षा के प्रासंगिक आदर्श

प्राचीन भारत में शिक्षकों, विद्यार्थियों और शैक्षणिक संस्थाओं नेनीने मिलकर सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से भी ऐसे अनेक कार्य किये और ऐसी अनेक परम्पराएं स्थापित की, जिसकी प्रासंगिकता चिरकालीन है। कठोपनिषद् में वर्णन आता है कि अध्यात्मिकता ने भौतिकता पर विजय प्राप्त की। आधुनिक युग में जिस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से व्यावसायिकता विकसित हो रही है. उस वातावरण में कठोपनिषद् के इस आदर्श की प्रासंगिकता से इंकार नहीं किया जा सकता। आधुनिक शिक्षा शास्त्री भी मानते हैं कि शिक्षा के जो ठोस उद्देश्य हमारा निक्षित मार्गदर्शन करते हैं. वह ऐसे होना चाहिए जिनका तालमेल हमारे जीवन के अनुकूल तथा आदशों के अनुरूप रहे।

इस दृष्टि से भारतीय शिक्षा का दर्शन प्रासंगिकता के चिरस्थावी आदर्श उपस्थित करता है। सामान्यतः पश्चिमी चिन्तन से प्रभावित शिक्षाविदों और विचारकों ने यह मत बार–बार प्रस्तुत किया है कि प्राचीन भारत की शिक्षा केवल कर्मकाण्डों पर आधारित थी, लेकिन वास्तव में उनका कथन सत्य से परे है। वास्तविकता यह है कि प्राचीन शिक्षा में जप– तप, कर्मकाण्ड और पवित्रता से संबंधित अनेक नियम प्रचलित थे, लेकिन इस सम्पूर्ण प्रणाली की व्यवस्था इस प्रकार थी कि जीवन के प्रति विद्यार्थी का दृष्टिकोण विस्तृत हो जाये, विद्यार्थी के मन में ज्ञान का प्रकाश जागे, उसकी बुद्धि प्रखर हो जाये और उसका तित्व ऐसा विकसित हो कि उसका चारित्रिक बल बढ़े। आधुनिक समाज की भी यह एक बड़ी मांग है कि युवा पीढ़ी सच्चरित्र, मुशिक्षित और संस्कारों से युक्त हो। इस दृष्टि से प्राचीन भारत की शिक्षा का यह आदर्श अपने आप में प्रासंगिक सिद्ध होता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि वैदिक और उपनिषद् काल में ष्अज्ञानष शब्द का अर्थ एक विशेषता के साथ था। आधुनिक समाज में किसी विशेष जानकारी के अभाव को अज्ञान कहा जाता है, जबकि प्राचीन शिक्षा पद्धति में आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव को ष्अज्ञानष कहा गया है। जानकारी या सूचना तो कम्प्यूटर क्राति के इस युग में कम्प्यूटर में प्रयोग में होने वाले माउस की एक क्लिक पर उपलब्ध है। इस सूचना के प्रयोग से जब तक मानवीय कल्याण के लिए प्रयत्न नहीं किए जाते, तत्र तक शिक्षा का ध्येय पूर्ण नहीं हो सकता। प्राचीन भारत की शिक्षा में इसी आय की और विशेष बल दिया था। उस समय सूचना को ज्ञान नही माना जाता था अपितु अनुभव और आत्मसात कर लेने की पद्धति को ज्ञान माना जाता था। भारतीय शिक्षा का यह दर्शन आज यथावत प्रासंगिक है।

आधुनिक समाज में विघटन एक बड़ी सामाजिक समस्या है। इस समस्या को दूर करने के लिए राजनीतिक स्तर पर अनेक प्रयत्न किए जाते हैं। विघटन विभिन्न स्तरों पर है, जिसका प्रभाव व्यक्ति से अंतर्राष्ट्रीय समाज तक व्यापक है। प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति में इस सामाजिक समस्या का हल भी दिखाई देता है। हमारी शिक्षा ब्रह्म की सर्वव्यापकता के सिद्धान्त पर आधारित थी। जिसमें सृष्टि के समस्त तत्वों में एकात्म स्थापित करने और वसुधैव कुटुम्बकम के अनुरूप आचरण करने का संस्कार विकसित किया गया था। ब्रम्ह के स्वरूप को स्पष्ट करके उपनिषदों का समन्वयवाद और सृष्टि में ऊपरी तौर पर दिखाई देने वाली अनेकता के बाद भी उसमें निहित एकता का दर्शन–प्राचीन शिक्षा के अनिवार्य उपादानों में सम्मिलित था। शिक्षा का यह आदर्श आधुनिक समाज में हमेशा की भांति प्रासंगिक है।

आधुनिक समाज में शिक्षा को अनिवार्य बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। स्कूल चलो अभियान, सर्व शिक्षा अभियान, शिक्षा का अधिकार जैसे अनेक प्रयोग शासकीय स्तर पर संचालित किये जाते हैं। इन समस्त प्रयत्नों के बाद भी भारत की एक–तिहाई जनसंख्या आज भी निरक्षर है। इसमें कोई दो मत नहीं कि शासकीय स्तर पर चलाई जाने वाली विभिन्न योजनाओं, शैक्षिक और सामाजिक संगठनों द्वारा किये गये प्रयत्नों, आदि में शिक्षा के विकास में बहुत सहायता मिली है, लेकिन अब भी मीलों का सफर पूरा किया जाना शेष है। यदि हम प्राचीन शिक्षा की और दृष्टिपात करें तो इस समस्या का हल हमें दिखाई देता है। प्राचीन भारत में शिक्षा अनिवार्य नहीं होते हुए भी शिक्षा का प्रचार प्रसार बहुत था, लेकिन आधुनिक युग में शिक्षा अनिवार्य करने के प्रयत्न के बाद भी सफलता नहीं मिल पा रही है। प्राचीन समय में शास्त्रकारों ने शास्त्रों में विभिन्न व्यवस्थाएं विकसित की थी, जैसे ब्रम्हचर्य आश्रम, उपनयन संस्कार, बाहुबल की अपेक्षा बुद्धि बल को प्रतिष्ठित करना, आचायों को विशेष सम्मान आदि। इन विशेष शास्त्रीय परम्पराओं के परिणामस्वरुप ही शिक्षा समाज की संस्कृति का एक अंग बन गई। माता–पिता गरीब होते या संपन्न, प्रत्येक स्थिति में अपने बच्चे को गुरु के पास पढ़ने अवश्य भेजते थे। आधुनिक युग में बच्चों की पढ़ाई के स्थान पर समाज के एक वर्ग में बच्चों से मजदूरी करवाना और उनके श्रम से प्राप्त आग से घर चलाना सामान्य परम्परा है। इस दृष्टि से शिक्षा को सामाजिक सरकार का अग बना देना और समाज में उसकी अनिवार्यता को सामाजिक संस्कृति के तत्व के रूप में प्रतिष्ठित कर देना प्राचीन शिक्षा का आदर्श रहा है और यह पूर्ण प्रासंगिक है।

जिस देश की मिट्टी में हमारा जन्म हुआ है, जहां के प्राकृतिक संसाधनों से हमने पोषण प्राप्त किया है और जहां की विविध सुख–सुविधाओं के कारण हमारा जीवन निर्वाध रूप से चलता है उस देश के प्रति निष्ठा की भावना प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति का अनिवार्य पहलू रही है। हमारे ऋषि–मुनियों ने यह आदर्श प्रस्तुत किया है कि लंका भले ही सोने से भरी हुई हो, लेकिन माँ और जन्मभूमि से बढ़कर स्वर्ग भी नहीं है। राष्ट्रभक्ति के इस आदर्श की प्रासंगिकता से कोई भी असहमत नहीं हो सकता। प्राचीन भारत की राष्ट्रीयता में मूल रूप से एकता और सहअस्तित्व के तत्व उल्लेखित थे। में तत्व राष्ट्रीयता के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी सर्वस्वीकार्य हैं। ऋग्वेद के सूत्रों में साथ–साथ चलने, साथ–साथ भोजन करने और साहसपूर्ण कार्य माथ–साथ करने का उपदेश दिया गया है। भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति ने मनुष्य मात्र को समान मानकर सबके मुखभाग में संतुलन बनाये रखने का प्रयत्न किया। शिक्षा का यह आदर्श वर्तमान समाज में भी यथावत प्रासंगिक है। आधुनिक विश्व में भू–मंडलीकरण और वैश्वीकरण जैसे शब्दों का प्रयोग होने लगा है, लेकिन भारत ने अपनी प्राचीन शिक्षा पद्धति में संपूर्ण विश्व की एक धीसले के रूप में प्रस्तुत किया और उस आदर्श का प्रचार किया कि वत्र विश्व भवत्येकनीम। शिक्षा के क्षेत्र का यह सार्वभौमिक विचार और लोक मंगल की भावना सभी विद्यार्थिनी में प्रेम–सहानुभूति, त्याग, सहनशीलता और विचारशीलता के गुण भर देने के लिए अभिप्रेरित है। वर्तमान समय में जहां आसुरी शक्तियां आतंकवाद के विद्यालय और प्रशिक्षण केन्द्र चला रही हैं, ऐसी स्थिति में गुरुकुली, आश्रमों और शिक्षण संस्थानों से लोक मंगल करने वाले विद्यार्थियों का सृजन सदैव प्रासंगिक रहेगा।

प्राचीन शिक्षा पद्धति में सभी कुछ श्रेष्ठ था ऐसा कहना उपयुक्त नहीं होगा। निशित रूप से शिक्षा में धर्म का अधिक प्रभाव, लौकिक शिक्षा के प्रति पूर्ण ध्यान नहीं दिया जाना, भौतिक विज्ञानी का पर्याप्त विकास न होना, निशिन पाठ्य पुस्तकों का अभाव होना और शिक्षण विधियों में एककाला का अभाव होना कुछ ऐसे घटक थे, जिनके कारण प्राचीन शिक्षा पद्धति में अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई, लेकिन प्राचीन समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप इन समस्याओं को गहराई में अनुभव नहीं किया गया था। वर्तमान युग में भी ये समस्याएं शिक्षा पद्धति के साथ में विद्यमान है। धर्म का अत्यधिक प्रभाव होना शिक्षा पद्धति का दोष नहीं अपित उसकी चारित्रिक विशेषता थी। यह स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि पूजा पद्धति या उपासना पद्धति धर्म नहीं होती। उपासना पद्धति अलग–अलग होते हुए भी धर्म एक ही हो सकता है। इसलिए धर्म को धारण करने योग्य उन सभी गुणों का समन्वित रूप बताया गया है, जिनके आदर्श सदा प्रासंगिक हैं। आज भी कोई शिक्षा पद्धति संस्कारित जीवन के आदर्श से इंकार नहीं कर सकती।

जहां तक लौकिक शिक्षा पर या भौतिक साधनों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिए जाने का प्रश्न है, यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्राचीन समाज के निवासियों की आवश्यकताएं ही सीमित थी और उन्होंने अपनी सीमित आवश्यकताओं के कारण लौकिक साधनों तथा भौतिक सुविधाओं पर उतना ही ध्यान दिया, जितने से उनकी जरूरतें पूरी हो जाती थी। प्राचीन भारत में किए गये अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों के अनेक उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं। जैसे दिल्ली में कुतुबमीनार के पास महरौली के लौह स्तम्भ पर, लगभग 2000 वर्ष बीतने के बाद भी, आजतक जंग नहीं लगा है। इस स्तम्भ का क्षरण भी नहीं हुआ है। यह सिद्ध करता है कि उस समय के गुरुकुलों और शिक्षण संस्थानों में धातु विज्ञान उच्च स्तर पर पहुंच गया था। इसी प्रकार लगभग 2300 वर्ष पूर्व बनाया गया सांची का स्तूप वास्तुशिल्प का तथा रेखागणित की तकनीकों का असाधारण उदाहरण है। विचार केवल इतना है यदि 2300 वर्ष पूर्व सिविल इंजीनियरिंग इतने उच्च स्तर पर पहुंच चुकी थी कि सांची के स्तूप सहित अनेक महलों और इमारतों का त्रुटि रहित निर्माण हुआ था, तो निश्चित रूप से इस विज्ञान का प्रारंभ भारत में इससे भी हजारों वर्ष पूर्व हुआ होगा। ये दो उदाहरण भारत में भौतिक साधनों और लौकिक विषयों पर शिक्षा की समृद्ध परम्परा के परिचायक है।

प्राचीन भारत के ऋषियों ने पाठ्यपुस्तकों पर इसलिए अधिक बल नहीं दिया था. क्योंकि वे अपना ज्ञान स्मृति से हस्तांतरित करते थे। उन्होंने इस प्रकार की तकनीकें विकसित कर ली थी जिससे कि कागज का प्रयोग किये बिना पूरा ग्रन्थ गुरू से शिष्यों के मस्तिष्क में पहुंच जाता था। स्मरण करने की सुविधा के लिए उन्हेंनि पाठ्य विषयों को इलाकों में बाध लिया था और स्वर के साथ उनका उच्चारण किया जाना था। यहीं कारण है कि शुद्ध विज्ञान के विषय भी हमें प्राचीन संस्कृत साहित्य में स्वर के रूप में दिखाई देते हैं। शकराचार्य श्री भारती कृष्णगलीचं द्वारा वैदिक गणित की खोज प्राचीन वैदिक साहित्य में से की गई है। वैचिकगणित के सोलह सूत्रों से अनेक जटिल गणनायें सहजता से की जा सकती है। आधुनिक गणित की आधारशिला समझने के लिए वैदिक गणित की प्रासंगिकता सर्वविदित है। आधुनिक समाज में शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी जहां छोटी से गणना करने के लिए कैलक्युलेटर का प्रयोग करता है, वहीं वैदिक गणित के माध्यम से गणनाओं को मुखात्र, सहज, सरल रूप से पूर्ण किया जा सकता है। वैदिक गणित और अन्य प्राचीन लौकिक विद्याओं के आदर्श आज भी प्रासंगिक हैं। आवश्यकता केबल इन्हें वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप अद्यतन बनाने की है।

मौखिक रूप से विद्या का हस्तांतरण विद्यार्थियों की स्मृतियों को बढ़ाना का कार्य करता था। आधुनिक समाज में आये दिन समाचार पत्रों में ष्स्मृति सुधार कार्यशालाओं के विज्ञापन प्रकाशित होते हैं। इनके प्रशिक्षक प्राचीन तकनीकों के सहारे ही स्मृति सुधार सिखाते हैं। वैदिक ऋषियों ने सहज श्लोकों का स्वर और संगीत के साथ में उच्चारण, आचार्य के मार्गदर्शन में स्मरण और नियमित तथा सामयिक पुनरावृत्ति की व्यवस्थाओं को स्मृति सुधार तकनीक के रूप में अपनाया। कम्प्यूटर से भले ही इन्टरनेट के माध्यम से सूचनाओं का समुद्र सभी को सुगम हो गया हो लेकिन कम्प्यूटर और इन्टरनेट की सर्वत्र सदैव उपलब्धता नहीं होती, जबकि मानवीय मस्तिष्क अपनी असाधारण क्षमता के बल पर सर्वत्र और सदैव सक्रिय रहकर सूचनाएं उपलब्ध करा सकता है और उनका चौद्धिक आधार पर विश्लेषण भी कर सकता है। इस दृष्टि से प्राचीन भारत में स्मृति विकास की परम्परा की प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

यह सदैव ही है कि प्राचीन भारत की अनेक विद्याए नए नामों के साथ में प्रस्तुत हुई है। पाठ्यक्रमों की विकास यात्रा और प्राचीन भारत के पाठ्य विषयों पर चर्चा करते समय यह स्पष्ट हुआ है कि उस समय भी कला, विज्ञान और वाणिज्यिक के माथ–साथ व्यावसायिक, सैनिक और शारीरिक शिक्षा दी जाती थी। मध्यकाल में देश के समृद्ध ग्रंथालयी को नष्ट कर दिये जाने के कारण हमारे प्राचीन ज्ञान का एक बड़ा हिस्सा भले ही लुप्त हो गया हो, लेकिन इस चारे में दो मन नहीं है कि भारतीयों ने लगातार शोध और अनुसंधान के द्वारा पाठयक्रमों के विविध विषयों पर विकास व्ही एक लबी यात्रा तय कर ली थी। राईट बंधुओं द्वारा विमान का आविष्कार किये जाने के पूर्व ही चेदिक साहित्य में विमान के संबंध में विवरण उपलब्ध थे। ध्वनि से या मंत्र से संचालित होने वाले अस शब्स और उपकरण आधुनिक युग में रिमोट कंट्रोल में चलने वाले उपकरणी एवं अस्त्रों

के समान रहे होंगे। आवश्यकता केवल संग्रहालयों में उपलब्ध पुस्तकों तथा पाण्डुलिपियों का अध्ययन करके प्राचीन शोध और अनुसंधान को वर्तमान समाज के लाभार्थ उपलब्ध कराया जाए।

आधुनिक समाज में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनेक नये देशों का उदय हुआ और भारत में भी वैचारिक प्रवृत्तियों का विकास हुआ। विश्व के सभी देशों ने आत्म गौरव के स्मरण के लिए अपने मूलभूत मूल्यों की तलाश प्रारंभ की। नव स्वतंत्र और नव स्थापित देशों में भी अपने भौगोलिक क्षेत्र की मूलभूत परम्पराओं की तलाश के प्रयत्न हुए। के अनुसंधान आध्यात्मिक न रहकर बहुआयामी बन गया। लबी विदेशी दासता से आत्म गौरव को भूल चुके वर्तमान समाज के लिये प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति असाधारण रूप से प्रासंगिक सिद्ध होती है। देश का सपूर्ण संचित जान और विश्व भर के लोगों का मार्गदर्शन करने में समर्थ, समृद्ध परम्परा प्राचीन भारत की ही देन है। यदि हम शोध करते हैं तो यह हो जाता है कि भारत की प्राचीन शिक्षा में भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में ऐसे अद्भुत आविष्कार किये थे, जिनका संपूर्ण विश्व ऋणी है। इस दृष्टि में प्राचीन भारतीय शिक्षा की प्रासंगिकता सहज सिद्ध होती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत भूषण (2022) वैदिक काल में बालक की शिक्षा, नव आर्थिक (आर्थिक –सामाजिक विषयों की पत्रिका), वोल्यू न.1, पृ. सं. 12
2. कविता नागर (2022) उपनयन संस्कार, शिविरा पत्रिका,फरवरी पृ.सं. 11
3. अल्का पुरोहित (2023) के अनुसार वैदिक शिक्षा, नव आर्थिक (आर्थिक –सामाजिक विषयों की पत्रिका), पृ. सं. 45
4. विकास बेनीवाल (2023) वैदिककाल में जीवन, नव आर्थिक (आर्थिक –सामाजिक विषयों की पत्रिका), पृ. सं. 33
5. आदर्श (2023) वैदिक काल में बालको को प्रारम्भिक शिक्षा, शिविरा पत्रिका,फरवरी पृ.सं. 34
6. राधा जैन (2023) गुरूकुल, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, जुलाई–दिसम्बर पृ. सं.19
7. आशुतोष (2023) वैदिक कालीन शिक्षा, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, पृ. सं.44
8. रिशिता (2023) वैदिक कालीन शिक्षा, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, पृ. सं.36
9. अंजलि (2023) आधुनिक शिक्षा प्रणाली वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली, नव आर्थिक (आर्थिक –सामाजिक विषयों की पत्रिका), पृ. सं. 43
10. निकिता (2023) प्राचीन वैदिक कालीन शिक्षा, नव आर्थिक (आर्थिक –सामाजिक विषयों की पत्रिका), पृ. सं. 49.

❖◆❖